एक किला जो 650 साल पहले मिट्टी से बना था

बंगलुरु को आज भारत की आईटी राजधानी माना जाता है जहां देश भर से लोग पढ़ने और नौकरी करने आते हैं। लेकिन यहां रहने वाले और बाहर से आने वाले ज़्यादातर लोगों को बंगलुरु क़िले और इसके अद्भुत इतिहास के बारे में कोई ख़ास जानकारी नहीं है। पेश है बंगलुरु क़िले के बारे में 5 ऐसी बातें जो शायद आपको भी न मालूम हों।

सन 1537 में विजयनगर साम्राज्य के स्थानीय प्रमुख हिरिया केंपे गौड़ा ने अपनी राजधानी के लिए एक जगह चुनी थी। जिसे आज हम बंगलुरु के नाम से जानते हैं। केंपे गौड़ा ने राजधानी केचारों तरफ़ मिट्टी की दीवारें बनवाईं गई थीं । इस तरह बंगलुरु का पहला क़िला वजूद में आया था। ये दीवारें क़रीब 2.24 स्क्वैयर कि.मी. में फैली हुईं थीं। मिट्टी के क़िले के अंदर गौड़ा ने जनता के लिए सड़कें और बाज़ार आदि बनवाए। उनके बनवाए कई बाज़ार आज भी मौजूद हैं। इसके अलावा पत्थर के सात में से चार बुर्ज, लालबाग़ में, बांदी महाकाली मंदिर के पीछे, मेखरी सर्किल के पास केंपेगौड़ा टॉवर पार्क और उल्सूर नहर के पास आज भी देखे जा सकते हैं।

बेटी का बलिदान

बेंगलुरु के पहले क़िले के निर्माण के दौरान दीवार का एक हिस्सा लगातार गिर रहा था । ऐसा माना गया कि किसी बड़ी दुर्घटना को रोकने के लिए और भगवान को प्रसन्न करने के लिये, किसी गर्भवती महिला का बलिदान करना होगा। लेकिन केंपे गौड़ा ने इसकी इजाज़त नहीं दी। इस विकट स्थिति से केंपे गौड़ा को बचाने के लिए उनकी गर्भवती बहू लक्ष्मी देवी ने आधी रात को घर से निकलकर आत्महत्या कर ली। कैंपे गौड़ा ने, अपनी बहू की स्मृति में, कोरामंगला में लक्ष्मीअम्मा मंदिर बनवाया जो आज भी मौजूद है। हालंकि हमारी जानकारी के अनुसार ये मंदिर ज़्यादातर समय बंद ही रहता है और स्थानीय लोग यहां कूड़ा-कचरा फेंकते रहते हैं। पास में ही BBMP पार्क में लक्ष्मी देवी का एक स्मारक भी है।

हैदर अली को जागीर में मिला था बेंगलुरु क़िला

बेंगलुरु क़िला कई शासकों के हाथों से गुज़रा है। पहले कुछ समय तक इस पर बीजापुर सल्तनत का नियंत्रण था । बाद में इस पर मुग़ल सल्तनत का कब्ज़ा हो गया। सन 1689 में बंगलुरु क़िला, मैसूर के

वाडियार शासकों को बेच दिया गया। चिक्का देवराया वाडियार ने इसे तीन लाख रुपये में ख़रीदा था। वाडियारों के शासनकाल में सन 1673 और सन 1704 के बीच क़िले का और विस्तार हुआ। सन 1758 में वाडियार के सैनिक कमांडर हैदर अली को ये क़िला जागीर के रुप में मिला था और उसने क़िले का नवीकरण का काम शुरु करवाया। क़िले की पत्थर की दीवारें जो आज हम देखते हैं वो हैदर अली ने ही मिट्टी की दीवारों को बदल कर बनवाईं थीं।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने की थी बेंगलुरु क़िले की घेराबंदी

मार्च 1791 में तृतीय एंग्लो-मैसूर युद्ध के दौरान लॉर्ड कॉर्नवैलिस की कमान में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगलुरु को बारह दिन तक घेर कर रखा था। इस दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी की दो सैन्य टुकड़ियों ने चुपचाप क़िले की खाई तक सुरंगे बना डाली थीं। इन सुरंगों के ज़रिये कॉर्नवैलिस ने 21 मार्च 1791 की रात, क़िले पर हमला बोलकर उस पर कब्ज़ा कर लिया। आज बंगलुरु क़िले के नाम पर हमें सिर्फ़ उसका दिल्ली गेट नज़र आता है। क्योंकि क़िले के नाम पर सिर्फ़ वही बचा रह गया है। गेट से लगी एक तख़्ती है जिस पर लिखा है, "क़िले पर हमला क़िले की दीवारों को तोड़कर किया गया था।"

बेंगलुरु का क़िलेदार जिसे आज संत माना जाता है
कॉर्नवैलिस के हमले के दौरान अंग्रेज़ों ने क़िले में एक व्यक्ति को देखा, जो संत जैसा दिखाई दे रहा था। जो काफ़ी लंबा और बहुत ख़ूबसूरत था। उसकी सफ़ेद दाढ़ी पेट के नीचे तक लंबी थी। इसकी उम्र 70 साल से ज़्यादा थी लेकिन जंग के मैदान में लगता था जैसे उसकी उम्र 30 या 35 साल हो। ये व्यक्ति और कोई नहीं बहादुर ख़ान 'क़िलेदार' या क़िले का कमांडर था। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना के लेफ़्टिनेंट रॉड्रिक मैकेंज़ी ने बाद में लिखा था, "बहादुर ने दम तब तोड़ा था, जब उसके शरीर पर उतने ही ज़ख़्म हो गए थे, जितने जूलियस सीज़र को हुए थे।" उसकी बहादुरी से प्रभावित होकर अंग्रेज़ों ने उसका शव टीपू सुल्तान को देने की पेशकश की। कहा जाता है कि कमांडर की मौत की ख़बर सुनकर टीपू रोने लगा था और फिर उसने जवाब दिया, "ख़ान को दफ़न करने की इस से बेहतर कोई और जगह नहीं हो सकती। क्यों कि इसी जगह की हिफ़ाज़त करते हुए उसने अपनी जान दी है।" टीपू के जवाब के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने दिल्ली गेट से तीन मिनट की दूरी पर, एसजेपी रोड और एनआर रोड के किनारे पूरे सम्मान के साथ क़िलेदार को दफ़न कर दिया। ये जगह आज केआर मार्किट के नाम से जानी जाती है। जिस जगह क़िलेदार को दफ़न किया गया था उस जगह आज एक दरगाह है। बहादुर ख़ान को आज हज़रत मीर बहादुर शाह अल-मारुफ़ सय्यद पाचा शहीद के नाम से जाना जाता है। इस दरगाह की ज़ियारत करने हिंदू और मुसलमान दोनों ही आते हैं लेकिन बहुत कम लोगों को मालूम है कि ये व्यक्ति कोई संत नहीं बल्कि एक सैनिक था।

आज बेंगलुरु क़िले के बस कुछ अवशेष ही रह गए हैं। सन 1861 में शहर के चारों तरफ़ खड़ी दीवारें ढ़ह गईं थीं और खाई पट गई थी। क़िले में मौजूद क़ब्रिस्तान, जहां अंग्रेज़ सैनिकों की कब्रें थीं, वह भी 1912 में ही ग़ायब हो चुका था। क़िले के बचे एक छोटे से हिस्से को भी विभाजित कर दिया गया है और इसके एक हिस्से में लोगों का प्रवेश वर्जित है। बंगलुरु क़िला हालंकि ठीकठाक स्थिति में है लेकिन इसकी कथा सुनाने वाला अब कोई नहीं है।

साभार https://hindi.livehistoryindia.com/ से